आधुनिकता और प्रतिभाशाही

एक चौथे रास्ते की खोज

अमन मदान
अनुवादः मनोज कुमार झा

आरक्षणों पर बहस, लगता है, कभी समाप्त होने वाली नहीं है। शायद यह बहुत हलचल और रोष इसलिए पैदा कर देती है क्योंकि यह हमारे समय के कुछ बहुत ही बुनियादी सवालों को छूती है। बहुत मुख्तसर में, मेरा विचार है कि आरक्षणों ने मदद पहुंचाई लेकिन वास्तव में वे बहुत महत्वपूर्ण नहीं; अभी बहुत कुछ और करना बाकी है। मैं ऐसा क्यों कहता हूं इसके लिए मुझे कुछ विस्तार में बताना पड़ेगा।

आज के आरक्षणों के आने से पहले भी दुनिया दूसरे प्रकार के आरक्षणों से भरी थी। राजा जिन पर भरोसा करते थे वैसे दरबारी चुनते थे। सो आमतौर पर इसका अर्थ था रिश्तेदारी और समुदाय के तंत्र के लिए आरक्षण। कौन अमीर और शक्तिशाली बन जाता यह बहुत हद तक इस बात से प्रभावित होता था कि किस परिवार में उसका जन्म हुआ है। चाहे यह मुगल साम्राज्य था या मराठा, वे जाति, गोत्र, और समुदाय के तन्त्र से चुनकर अपने अधिकारियों को बहाल करते थे। हमें अंग्रेजों को बुरा-भला बोलना अच्छा लगता है लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि उनके जरिए ही उत्तरी यूरोपीय आधुनिकता का एक विचार कि संस्थाओं में मुक्त परीक्षाओं के माध्यम से नियुक्ति करनी चाहिए और चयन केवल प्रतिभा के आधार पर होना चाहिए, भारतीय संस्थागत व्यवहारों में प्रवेश करने लगा।

उत्तर मध्ययुगीन यूरोप ने भी 'ऊंचे' परिवार में जन्म लेने वाले लोगों को ही शक्तिशाली पदों पर नियुक्त करने को प्राथमिकता दी थी। पूंजीवाद द्वारा सामाजिक परिदृश्य के मंथन से आधुनिकता और प्रबुद्धता ने एक बड़े रूप में इस प्रथा को तोड़ने में मदद मिली। फ्रांसीसी क्रान्ति के ''समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व'' के नारे ने एक नई विश्व दृष्टि के बारे में बतलाया जिसमें हर व्यक्ति की एक समान मानवीय प्रकृति थी और यह सोचना सरासर गलत था कि कुलीनों का खून ऐसा था जो उन्हें किसी प्रकार से श्रेष्ठ और विशेषाधिकारों के योग्य बनाता था। यह सोच बहुत सारे भारतीय भक्तों और सूफियों के विचारों में प्रतिध्वनित होती थी; वे विश्वास करते थे हर व्यक्ति की आत्मा समान है जो अविनाशी परमात्मा का अंश है। यहां भी यह कहा जाता था कि कर्म का महत्व है, जन्म का नहीं।

हालांकि 19वीं सदी के पश्चिमी यूरोप में यह अद्वैतिक समानतावाद आध्यात्मिक क्षेत्रों से उतरा और संस्थागत व्यवहारों में अभिव्यक्त हुआ। भले ही फ्रांसीसी क्रान्ति जल्द ही एक खूनी खेल में बदल गई, जब नेपोलियन ने अपने को नवीन फ्रांसीसी गणतंत्र का सम्राट घोषित करने के लिए सत्ता हथिया ली, उसने इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों की एक श्रृंखला भी स्थापित की जिनमें मुक्त प्रवेश परीक्षाओं से दाखिला होता था। हालांकि चीनी राज्य में नौकरशाही में कई सदियों से मुक्त प्रवेश परीक्षाएं थीं, फ्रांसीसी राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों ने चयन की इस औपचारिक व्यवस्था को संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में स्थापित कर दिया। इन विश्वविद्यालयों के बारे में कहा जाता है इन्होंने खून और जन्म नहीं बल्कि प्रतिभा पर आधारित पेशे की राह दिखलाई।

प्रतिभाशाही के आधारभूत विचार

नियुक्तियों के लिए प्रतिभा को आधार बनाने का विचार 19वीं सदी में तेजी से विकसित हुआ। इसके मायने यह थे कि अधिक से अधिक व्यक्तियों का चयन उनके अकादमिक ज्ञान पर आधारित था जिसे विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं के माध्यम से परखा जाता था। भारत में इसका प्रवेश बड़े ही नाटकीय अन्दाज में तब हुआ जब भारतीय सिविल सेवा ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के निर्देशकों द्वारा संरक्षण के अपने नियुक्ति मॉडल को एक प्रवेश परीक्षा के माध्यम से नियुक्ति में बदल लिया। जी ओ ट्रीवेलयन जो ग्रीक और लैटिन का अध्ययन कर भारत आए, ने 1864 में ''कम्पीटीशन वालों'' के बारे में लिखा। इसमें उनमें से कुछ साधारण पृष्ठभूमि के ऐसे विद्यार्थियों का आना संभव था जो अपनी स्कूली और विश्वविद्यालयी शिक्षा में अच्छा प्रदर्शन कर अति वरीय अंग्रेज अधिकारियों और भारतीय राजाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करने आ सके।

'प्रतिभाशाही' (meritocracy), जिस नाम से यह बाद में प्रचलित हो गई, कुछ विशेष विचारों पर आधारित थी। पहला था कि उच्च पदों पर चयन का आधार उपलब्धि और योग्यता होना चाहिए। कुलीनों को केवल इसलिए नहीं लेना चाहिए कि वे किसी के सम्बन्धी हैं बल्कि उनके अपने कठिन परिश्रम और कुशाग्रता के बल पर लेना चाहिए। वरीय अधिकारियों के एक समूह का गठन मुख्य रूप से उनकी वफादारी के आधार पर चुन कर करने की बजाय यह एक बहुत ही बेहतर तरीका था। इससे केवल कुलीन वर्ग में जन्म लेने वालों के समूह तक सीमित रहने के बजाए प्रतिभा के कहीं अधिक बड़े समूह का उपलब्ध होना संभव हुआ।

यह बात एक दूसरे विचार, व्यक्तिवाद के साथ भी जुड़ी थी जो व्यक्तियों को अपनी मर्जी के मालिक और सामाजिक दबावों को सहने की क्षमता रखनेवाले के रूप में देखता था। संस्थाओं के निर्माण में एक सामाजिक सिद्धांत के रूप में व्यक्तिवाद का मतलब था कि व्यक्तियों की सामाजिक उत्पत्ति को देखे जाने की जरूरत नहीं थी बल्कि केवल उनके व्यक्तिगत गुणों और प्रतिभा का ही महत्व था।

एक तीसरा विचार था कि कौन से लक्षण प्रतिभा को गढ़ते हैं। जब किसी व्यक्ति के गुणों की जांच की जानी है तो दरअसल क्या खोजा जा रहा है? विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षित लोगों की बढ़ती शक्ति उत्तरोत्तर इसे इस बात की ओर ले गई कि अकादमिक या विश्वविद्यालयी ज्ञान ही योग्यता का लक्षण था। इस ज्ञान के पास स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किए जाने का लाभ था और इसकी जांच की स्थापित विधियों की उपलब्धता भी थी। जिस प्रकार अकादमिक संस्थानों में ज्ञान की व्याख्या की जाती थी वही प्रतिभा का प्रमाण चिह्न बन गया। इसलिए, स्कूली ज्ञान में निपुणता और खास तौर पर जिस प्रकार के उपयोगी लक्षणों को परीक्षाएं पहचानने में समर्थ थीं, वे ही प्रतिभा को परिभाषित करने लगीं।

प्रतिभाशाही के विचार और इसे लागू करने का समग्र प्रभाव वास्तव में उन दिनों में किसी को भी मुक्त होने का अहसास करवाने वाला था। इसने पैतृक विशेषाधिकारों की बेड़ियां तोड़ने में मदद की और समानता और स्वतंत्रता के आदर्शों को अभिव्यक्ति दी। हम अपने इतिहास से नहीं बंधे थे, बल्कि एक व्यक्ति के रूप में जो भी हम चाहें हो सकते थे। ऐसे विचार प्रजातंत्र, उदारवाद और एक प्रकार से समाजवाद के भी आधार थे। वे आधुनिक राष्ट्रवाद पर आधारित राज्यों के विकास से भी जुड़े थे जिसके समस्त नागरिक समान समझे जाते थे। प्रतिभाशाही की स्थापना ने उस समानता और आम नागरिकों के बीच से चयन करने की एक प्रक्रिया प्रदान की।

प्रतिभाशाही की इस प्रारम्भिक आधुनिक दृष्टि की कठिनाईयां अब जानी-पहचानी हो चुकी हैं। पहली बात तो यह है कि वैयक्तिक प्रतिभा की इसकी समझ केवल उन कुछ सामाजिक पहचानों की प्रासंगिकता के निषेध पर आधारित थी जो सर्वविदित और स्पष्ट थीं। ऐसी कई सामाजिक प्रक्रियाओं की पहचान ही नहीं थी जो लोगों को पीछे धकेल देती हैं और प्रतिभा की स्वतंत्र अभिव्यक्ति को दबा देती हैं क्योंकि वे स्पष्ट रूप से दिखलाई नहीं पड़ रही थीं। कुछ परिवार और समुदाय बहुत पहले से शिक्षा प्राप्त कर रहे होंगे और और उनके बच्चों को दूसरों से आगे जाने में अपने अभिभावकों का फायदा मिलता है। तीसरी या चौथी पीढ़ी के विश्वविद्यालयी छात्रों की बनिस्पत विश्वविद्यालयों में

प्रवेश करने वाली पहली पीढ़ी अपने को अधिक भयग्रस्त और कठिन स्थिति में पाती है। जब स्कूल में तटस्थ तरीके से पढ़ाया जाता है तो वह बच्चा ही कक्षा में अच्छा करता है जिसके मां-बाप घर पर गणित पढ़ाते हैं। पुराने विशेषाधिकार पुराने तरीके से पहचाने नहीं जा सकते थे मगर फिर भी प्रतिभाशाही के विचार को उल्टी दिशा में ले जा सकते हैं। इस स्थिति को पलटने का अर्थ था प्रतिभाशाही के विषय में एक नए अंदाज में सोचना।

यह धारणा कि प्रतिभा का निर्माण वैयक्तिक प्रयास से होता है और इसलिए यह एक वैयक्तिक गुण है केवल आंशिक रूप से सत्य है। यह सही है कि कठिन मेहनत और प्रेरणा का महत्व है। लेकिन पारिवारिक परिवेश, जाति, आर्थिक संसाधनों, ऐसे स्थान में रहना जहां अच्छी गुणवत्ता वाले स्कूल उपलब्ध हैं, इत्यादि का भी अपना महत्व है। एक ऐसी छात्रा, जिसका जन्म सूदूर गांव के एक भूमिहीन मजदूर के यहां हुआ है, को एक महानगर में रहने वाले पेशेवरों के एक परिवार के छात्र के समान स्तर तक पहुंचने के लिए बहुत अधिक कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। इसके बावजूद हमें कुछ ऐसे प्रखर छात्र मिलते हैं किन्तु इससे इस तथ्य से आंख नहीं चुराई जा सकती कि वे दुर्लभ अपवाद हैं और दरअसल धारा एकदम विपरीत है। एक उदाहरण के तौर पर नेशनल सैम्पल सर्वे (एनएसएस) के आंकड़ों (तालिका 1) द्वारा प्रदर्शित स्कूलों और कॉलेजों में नामांकित विभिन्न आयु वर्गों के युवा लोगों की प्रतिशतता पर गौर करें। यह उदाहरण उन्हें जाति के पैमाने से देखता है लेकिन क्षेत्रीय अंतरों, पेशागत और आयगत अंतरों, लैंगिकता इत्यादि के तुलनीय अंतरों को भी देखा जा सकता है। प्राथमिक विद्यालयों के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों एवं अन्य के नामांकन को समान करने की केन्द्र और राज्य सरकारों की कई सालों की कोशिश का फायदा हुआ है। 2011-12 तक 6-14 आयु-वर्ग के बीच के नामांकन में बहुत थोड़ा ही अंतर उनमें था। हालांकि जब हम माध्यमिक और उससे आगे की शिक्षा की ओर बढ़ते हैं तो वहां अपने 18-21 आयु-वर्ग के लगभग 36% को कॉलेज भेजकर अन्य बहुत बेहतर स्थिति में हैं। यह संभव है कि महानगरों के अन्य शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के अन्य की तुलना में बहुत ही बेहतर कर रहे हों। हालांकि, उनके बीच और अन्य जाति समूहों के बीच के अंतर एकदम स्पष्ट है। अन्य के 18-21 आयु-वर्ग के छात्रों की तुलना में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के केवल आधे छात्र किसी न किसी प्रकार के कॉलेज में जा रहे हैं। जो इन आंकड़ों से दिखलाई पड़ता है, वास्तव में अंतर उससे भी अधिक तीखे हो सकते हैं, क्योंकि विशिष्ट कॉलेजों से लेकर दो कमरों और शिक्षण का कोई नियमित समय तय नहीं होने जैसे कॉलेजों तक के बीच कॉलेजों की गुणवत्ता में बहुत ही भारी गिरावट है। ऐसे बहुत से कहे-सुने हुए साक्ष्य हैं जो दर्शाते हैं कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की उपस्थिति असंगत रूप से निम्नतम गुणवत्ता वाले कॉलेजों में हैं।

तालिका 1: विभिन्न आयु वर्ग में जातिवार नामांकन (प्रतिशत)

नामांकन	अनुसूचित जनजाति	अनुसूचित जाति	अन्य पिछड़ा वर्ग	सामान्य	कुल
स्कूल नामांकन 6–14 आयु वर्ग	91.2	91.9	92.7	94.8	92.9
स्कूल नामांकन 15–17 आयु वर्ग	67.9	67.4	74.9	80.1	74.2
माध्यमिक से आगे की शिक्षा में नामांकन 18–21 आयु वर्ग	14.2	18.8	25.2	36.6	26.2

स्रोतः एनएसएस आंकड़ों के 68वें चक्र के लेखक द्वारा की गई गणना।

हालांकि यह संभव है कि समग्र रूप में जाति प्रथा कमजोर पड़ी हो लेकिन अभी भी कई सामाजिक असमानताएं मौजूद हैं जो प्रतिभा और कठिन परिश्रम की अभिव्यक्ति में बाधा डालती हैं। जाति, वर्ग असमानता का जारी रहना, स्कूल व्यवस्था में क्षेत्रीय असमानताएं , लैंगिकता, भाषा की ताकत, इत्यादि ये सब मिलकर पूर्णता हासिल करने के लिए स्वतंत्र रूप से संघर्ष कर रहे शिक्षित व्यक्ति के आदर्श को दूषित कर देते हैं। पहुंच का सामर्थ्य और फिर अकादमिक संस्थानों

के अन्दर प्रदर्शन वैयक्तिक और सामाजिक दोनों का मिश्रण है। सामाजिक असमानताओं के प्रभाव को केवल तब ही कम किया जा सकता है जब प्रतिसंतुलन की ऐसी शक्तियां हों जो इनके प्रभावों को मिटाने के लिए काम करें। आधुनिकता का यह सपना कि यह सामाजिक संरचनाओं की हिंसा, जो व्यक्ति पर अत्याचार करती है, को मिटा देगी, पूरा नहीं हो पा रहा है।

शैक्षिक संस्थानों में पाठ्यचर्याएं और शिक्षाशास्त्र भी अनुचित भेदभाव के स्थल हो सकते हैं। सारे अकादमिक ज्ञान को दोषारोपित करते हुए एक अतिरंजित वक्तव्य दे देना उचित नहीं। कुछ लोगों का यह आरोप हो सकता है कि अकादमिक संस्थान केवल कुलीन वर्गों के स्वेच्छाचारी ज्ञान को सिखाते हैं। यह उतना ही गलत सामान्यीकरण है जितना यह कहना कि विश्वविद्यालयों के बाहर जो बोला और सिखाया जाता है वही मान्य ज्ञान है और केवल इसलिए क्योंकि यह उपेक्षितों से सम्बंधित है। हमें ऐसे चरम समाजशास्त्रीय नियतिवाद का सहारा नहीं लेना चाहिए। इसके साथ ही, यह भी पूछा जाना उचित होगा कि क्या हर वह चीज जो अकादमिक संस्थानों में पढ़ाई जाती है समान रूप से महत्वपूर्ण और इच्छित है। उदाहरण के तौर पर, यह पूछा जा सकता है कि क्या किताबी ज्ञान पर बहुत अधिक बल देना एक अच्छी चीज है।

स्कूल और विश्वविद्यालय के सीखने में जीवन्त और साकार चीजों की लगभग अनुपस्थिति केवल उनके लिए पक्षपातपूर्ण नहीं है जो शैक्षिक स्थल पर संसाधन लाते हैं बल्कि किसी भी सामाजिक मूल के सारे छात्रों के लिए हानिकारक है। किताबी अधिगम पर केन्द्रित होना उन शिक्षकों के लिए सुविधाजनक हो सकता है जिनके पास व्यावहारिक ज्ञान कम है लेकिन इसका परिणाम ज्ञान के झूठे पदानुक्रम की रचना भी है। जिनके पास किताबों और व्याख्यानों को संभालने की क्षमता है वे बेहतर कर सकते हैं लेकिन जो सामाजिक अंतर्क्रिया या पाने/रिंच और हथौड़ों के साथ काम करने में बेहतर कुशल हैं वे कक्षा में इन ज्ञान को बहुत महत्वपूर्ण नहीं पाते। जिस हद तक ये पाठ्यचर्या में शामिल किए जाने लायक हैं, इनकी अनुपस्थिति एक अनुचित भेदभाव के रूप में काम करती है। जिस हद तक किताबी ज्ञान वास्तव में मूल्यवान है, उसमें निःसंदेह कुछ भी अनुचित नहीं।

हालांकि, हमने अब यह समझना प्रारम्भ किया है कि शिक्षा की अंतर्वस्तु के एक बड़े हिस्से को शिक्षा के उद्देश्यों के लिए उसकी उपयुक्तता के बजाय उन सामाजिक समूहों की सुविधा के हिसाब से ढाला जा सकता है, जिनका इस पर वर्चस्व है। यह जो कशमकश पेश करता है उसका एक सर्वोच्च उदाहरण है कुलीन संस्थानों में पढ़ाई के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का इस्तेमाल। इसकी उपयोगिता भाषा के रूप में इसके अन्तर्निहित गुणों के कारण नहीं बल्कि बस इसलिए है कि यह प्रभावशाली समूहों की भाषा है।

आधुनिकता की कठिनाइयों के प्रत्युत्तर

अतः जब हम प्रतिभाशाही के बारे में एक शुद्ध व्यक्तिमूलक रूप में विचार करते हैं तो कुछ चीज हमसे छूट रही हो सकती हैं। प्रतिभा की गहन सामाजिक प्रकृति हमें यह बाध्य करती है कि हम इसके मुश्किल सवाल ढूंढे। हर वो चीज जो हमें बांध देती है उससे हमें मुक्त करने के आधुनिकता के संघर्ष को मैं नहीं नकारता। मुक्ति के इस आदर्श को नकारने की बजाय शायद हमें अपने सामाजिक सन्दर्भ के साथ हमारे संबंध की एक और अधिक परिष्कृत समझ की जरूरत होती है। स्वतंत्रता का वास्तव में अर्थ है कि व्यक्तियों को बिना किसी बाधा के अपने स्व और अपने जीवन को रचने में सक्षम होना चाहिए। और, फिर भी हमें इसे निश्चित इतिहासों और स्थलों के साथ अनिवार्यतः सामाजिक प्राणियों के रूप में मानवों के एक और अधिक यथार्थवादी दृष्टि के साथ समाहित करने की जरूरत है। हम जिस प्रकार कई गहन सभ्यता संबंधी सिद्धांतों को देखते हैं उसके लिए यह एक चुनौती है। यह आधुनिकता की परियोजना को नकार देना नहीं बल्कि एक समुदाय मूलक पुनर्निर्माण की चुनौती है। कुछ के लिए, इसका अर्थ आधुनिकता से मुंह मोड़ लेना और वापस लौट जाना है, उदाहरण के तौर पर सामन्तवादी या यहां तक कि आखेटक-संग्रहक प्रकार की विचारधारा की ओर एक वापसी। चूंकि मैं उनकी व्यावहारिकता से निराश हूं, बदले में हमें शायद एक ऐसी नई आधुनिकता को खोजना है, जो हमारे इतिहास और सामाजिक स्थल को स्वीकरते हुए न्याय और स्वतंत्रता प्रदान करने में समर्थ हो न कि इन्हें सीधे तौर पर नकार दे।

सामाजिक और शैक्षिक असुविधाओं के सामूहिक प्रकारों और सामूहिकताओं का सामना करने में आधुनिकता की कठिनाइयों ने विभिन्न प्रकार के प्रत्युत्तरों को आमंत्रित किया है। कुछ ने आधुनिकता और समानतावाद दोनों को नकार दिया है जैसा कि तब देखा जा सकता है जब लोग समानता के विचार को नकार देते हैं और इस बात पर जोर डालते हैं कि पुराने कुलीन अपनी प्रकृति से ही श्रेष्ठ होते हैं और उन्हें संस्थागत रूप से ऐसा स्वीकार किया जाना चाहिए। एक दूसरे प्रकार का प्रत्युत्तर उन लोगों की ओर से आता है जो समानतावाद और आधुनिकता के लिए प्रतिबद्ध हैं और इस बात पर विश्वास करते हैं कि सामाजिक भिन्नताओं को स्वीकार करना संस्थागत प्रक्रियाओं को विकृत कर देगा। समुदायों और सामाजिक संदर्भ के प्रभाव का प्रतिरोध होना चाहिए न कि उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए। उपलब्धियों को पुरस्कृत करना संस्थानों को निर्मित करने का एक महत्वपूर्ण पहलू है और इसके साथ कोई छेड़छाड़ उन संकेतों को विकृत कर देती है जो एक संस्थागत जीवन को विकसित करते हैं। जैसे कि चमचों को चुनना और उनकी पदोन्नति करना बन्द कर देना चाहिए और वैसे ही अपनी उपलब्धियों के बजाए किसी दूसरे कारण से व्यक्तियों का चयन नहीं होना चाहिए।

जाति के आधार पर आरक्षण आधुनिकता के साथ सामाजिक असुविधाओं को जोड़ने का एक तीसरा तरीका है। पहले वर्णित दोनों दृष्टिकोणों को आरक्षण पर गहरी आपत्ति है लेकिन उनकी आपत्तीस के कारण भिन्न हैं। चूंकि हो सकता है वे कभी-कभी एक दूसरे के तर्कों का इस्तेमाल करते हों किन्तु इस बात से उनकी भिन्न उत्पत्तियों और तीक्ष्ण रूप से विरोधी प्रकृति को छुपना नहीं चाहिए। दोनों, हालांकि, आरक्षण के परिणामों से असहज महसूस करते हैं और अपने संस्थानों में आरक्षण के आधार पर चयनित छात्रों की उपस्थिति पर दुखी हैं। भारत में आरक्षण का प्रभाव आश्चर्यजनक रूप से एक बहुत ही कम शोध किया हुआ क्षेत्र है। शायद हम अपने-अपने दृष्टिकोणों के प्रति इतने दृढ़ हैं कि साक्ष्य को ढूंढना निरर्थक प्रतीत होता है। और, आज भी, आरक्षणों के प्रभावों के अध्ययनों की खोज कुछ आश्चर्यजनक अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकती है।

उदाहरण स्वरूप टॉमस विस्कॉफ (2004), भारत में सकारात्मक कार्य नीतियों पर अध्ययनों की अपनी समीक्षा में एक महत्वपूर्ण बिन्दु सामने लाते हैं। वे तर्क देते हैं कि उनका मुख्य प्रभाव भारतीय समाज के ऊपरी स्तरों की प्रकृति के परिवर्तन में हुआ है। मध्य वर्ग की बनावट को बदलते हुए नए समूहों की पैठ हुई है। उच्च और अधिक शक्तिशाली वर्गों की जनसांख्यिकी में बदलावा लाया जा रहा है और इसके कुछ सोपानिक प्रभाव हो सकते हैं।

आरक्षणों के प्रभावों पर दूसरे प्रकार का बिन्दु वन्दना दांडेकर (2013), द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने महाराष्ट्र के मेडिकल कॉलेजों पर शोध किया। उनके आंकड़े दर्शाते हैं कि वे डॉक्टर जो सरकारी अस्पतालों में टिक गए असंगत रूप से आरक्षित सीटों से आए हुए थे। वे जिन्होंने निजी क्षेत्रों में भर्ती होने के लिए विभाग छोड़ दिया असंगत रूप से अनारक्षित सीटों से थे। आरक्षण ऐसे मेडिकल कर्मियों को पैदा करते हुए प्रतीत होते हैं जो निर्धनों को उपलब्ध हैं। भारतीय समाज को आरक्षणों द्वारा दिए गए सकारात्मक योगदानों का यह दूसरा उदाहरण है। हालांकि मैं यह नहीं कहता कि वे निर्णायक हैं, ये अध्ययन दिखलाते हैं कि आरक्षणों को एक समान निरर्थक और अहितकर नहीं कहा जा सकता। वे कम से कम कुछ लाभ प्रदान करते हैं।

प्रतिभाशाहियों पर पुनर्विचार

क्या आरक्षणों पर इतनी गर्म बहसों को हमें यह सोचने पर मजबूर नहीं कर देना चाहिए कि प्रतिभाशाही के अर्थ पर पुनर्विचार करने के वे अकेले और सबसे महत्वपूर्ण तरीके नहीं हैं। हालांकि आरक्षण उन लोगों को जो अन्यथा उच्च शिक्षा में प्रवेश नहीं पा सकते थे या निचले स्तरों पर रुके रह सकते थे को शामिल करने में एक हद तक अवश्य सहायता करते हैं लेकिन वे कई समस्याएं भी खड़ी करते हैं। इनकी एक आलोचना यह है कि भारत में सामाजिक असमानता की समाजशास्त्रीय परिभाषा जाति की अवधारणा तक सीमित है। प्रतिभाशाही की एक वैयक्तिक अवधारणा से एक समाजशास्त्रीय दृष्टि तक स्थानान्तरण में जाति-आधारित आरक्षणों से अधिक परिष्कृत होने की आवश्यकता होगी और इस दिशा में कई प्रयास किए गए हैं। उनमें से एक है उस तरीके को परिवर्धित करना जिससे हम सामाजिक

असमानता और शिक्षा के लिए इसके परिणामों का बयान करते और समझते हैं। जाति का सपाट प्रकार और आंकड़ों का इस्तेमाल करने की विधि मुख्यतः औपनिवेशिक युग का एक समाजशास्त्रीय प्रकार और प्रशासनिक उपकरण है। यह वह तरीका था जिससे अंग्रेजी औपनिवेशिक समाजशास्त्र सामाजिक समूहों की पहचान करता था और यह एक ऐसा प्रशासनिक पैमाना था जो उनके कार्यान्वयन के लिए आसान था। सामाजशास्त्र की सामाजिक असमानता की समझ और वे तरीके जिनसे विभिन्न प्रकार की सामाजिक असमानताएं आपस में अंतर्संबंध रखती हैं और एक-दूसरे से गुंथ जाती हैं, उससे बहुत आगे बढ़ चुकी हैं। इसे एक चौथे तरीके का आधार बनाया जा सकता है, जो सामाजिक असमानता की बहुकारक दृष्टि हासिल करता है और उसका इस्तेमाल सामाजिक और संस्थागत हस्तक्षेपों को निर्मित करने के लिए करता है।

एक उदाहरण के तौर पर, शिक्षा में सामाजिक असमानता के विविध स्रोतों जैसे लैंगिकता, पारिवारिक पेशा, आय, जाति, क्षेत्र, कक्षा 10 तक शिक्षा का माध्यम, इत्यादि का इस्तेमाल करते हुए असुविधाओं की सूचियां विकसित की जा सकती है। यह केवल जाति के बनिस्पत शैक्षिक असुविधा का कहीं अधिक सटीक पैमाना प्रदान करेगा। वर्तमान आंकड़ों के समूहों का इस्तेमाल इसके लिए किया जा सकता है कि प्रत्येक विशिष्ट कारक एक सूची में कितना योगदान करता है और प्रासंगिक आंकड़ा निर्मित करने के लिए नए अध्ययन भी किए जा सकते हैं। संस्थानों में ऐसी सूचियों का इस्तेमाल कई तरीकों से किया जा सकता है जैसे कोटा बनाने के लिए या दाखिला या पदोन्नति अंकों को मापने के लिए। ऑस्ट्रेलिया के कई विश्वविद्यालय अपने दाखिलों में इसी दृष्टिकोण को अपनाते हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली ने कई दशकों से इसके एक संस्करण का इस्तेमाल किया है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बंगलुरू ने भी एनएसएस डाटा से आठ कारकों का इस्तेमाल करते हुए एक सूची विकसित की है, जिसको इसने अपनी दाखिला प्रक्रिया में समाहित कर लिया है। यह एक ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें सही, पूर्व निर्मित उत्तर उपलब्ध हों। लेकिन जाति-आधारित आरक्षणों से परे देखना हमें सामाजिक असमानता को लक्षित करने और एक प्रतिभाशाही को निर्मित करने के जो तरीके अभी हमारे पास हैं उससे और भी बहुत बेहतर तरीके की ओर ले जाएगा।

मैंने पहले ही उन सामाजिक पूर्वाग्रहों को ध्यान में रखते हुए, जो उनमें चोरी-छिपे प्रवेश कर गए होंगे, पाठ्यचर्याओं पर पुनर्विचार करने का उल्लेख किया है। प्रतिभा की समाजशास्त्रीय समझ की दूसरी अभिव्यक्ति छात्र सहायता और शिक्षण की संस्थागत प्रक्रियाओं की रूपरेखा का पुनर्निर्माण होगा। परम्परावादी तरीका यह मानते हुए पढ़ाने का है कि एक सामान्य विद्यार्थी है और लक्षित करना है कि उसके मस्तिष्क की क्षमता क्या है। लेकिन यदि हम समझते हैं कि असमान पृष्ठभूमियों के छात्रों को दाखिला दिया जाना उचित है तो शिक्षण शैलियों को तदनुसार बदलने की आवश्यकता है। यह सच है कि यह अधिक जटिल है और शिक्षकों से नई तकनीकों और विचारों को आजमाने की अपेक्षा करता है। लेकिन पुराना तरीका उन सिद्धान्तों पर आधारित था जो हमेशा गलत थे- कि छात्र एक प्रकृति के हैं और शिक्षक का कर्तव्य केवल सबसे प्रखर और सर्वोत्तम को पढ़ाना है। वे कुछ छात्र जो सीख नहीं पाते इसका दोषारोपण पहले केवल छात्रों की क्षमताओं की कमी पर किया जाता था। अब हमने यह समझना प्रारम्भ किया है कि यह इसलिए भी था क्योंकि संस्थान उनके सीखने का खयाल नहीं करते थे और इसके बजाए 'सामान्य' (नॉर्मल) की जो एक प्रभावशाली छवि है उस पर केन्द्रित रहते थे। अगर हम इसमें विश्वास करते हैं कि भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमियों के विभिन्न तरीकों के वैचारिक और व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले छात्रों का होना वैध और सही है तब वे सब एक यथायोग्य शिक्षण शैली को पाने के वैध दावेदार हो जाते हैं। शिक्षक के लिए अब और संभव नहीं रह गया है कि छात्रों के प्रदर्शन में अंतरों का कारण उनकी वैयक्तिक प्रतिभाओं को ठहराए। शिक्षक और संस्थान- को सारे छात्रों की जिम्मेवारी लेनी चाहिए न कि केवल पुराने कुलीनों की।

आरक्षण कोटा से छात्रों का दाखिला लेना और फिर उन्हें प्रचलित तरीके से पढ़ाना जारी रखने और फिर यदि उनको मुश्किल होती है तो छात्रों और व्यवस्था को दोषारोपित करने की एक प्रवृत्ति रही है। वर्तमान तर्क के उद्देश्य से हम कल्पना करें कि एक युक्तिसंगत तरीके से दाखिले लिए गए हैं और एक विविधता सूची के इस्तेमाल से ऐसे छात्रों का दाखिला हुआ है जिनमें विविधताओं का एक नियंत्रणीय आतंरिक विस्तार है। यदि ऐसा है, तो कमजोर छात्रों को

सघन सहायता प्रदान करना जिससे कि जब तक शैक्षिक कार्यक्रम पूरा हो, वे उपलब्धि की एक संतोषजनक स्थिति तक पहुंच जाएं, सम्भव हो सकेगा। वे योग्यता और ज्ञान की एक पर्याप्त उच्च श्रेणी के साथ डिग्री प्राप्त करने के लायक हो सकेंगे ताकि वे समाज को उपयोगी योगदान दे सकें।

नई संस्थागत संरचनाएं

शिक्षण के ऐसे दृष्टिकोण का अर्थ है उस तरीके को बदलना जिसमें शिक्षण संस्थागत रूप से व्यवस्थित है। इसका अर्थ यह हो सकता है कि हम किस प्रकार शिक्षक के कार्यभार की और शिक्षकों की संख्या की आवश्यकता की भी गणना करते हैं। सारे विश्व में इसका अर्थ नई संस्थागत संरचनाओं का निर्माण करना है, जैसे कई अमेरिकी विश्वविद्यालयों में शिक्षण-अधिगम के जो केन्द्र हैं जो छात्रों की भाषाई समस्या के साथ ही अन्य कई अकादमिक उन्मुखीकरणों और कौशलों, जिनकी आवश्यकता उन्हें पड़ सकती है, को संबोधित करते हैं। समाजशास्त्रीय रूप से सचेत होकर रची गई प्रतिभाशाही के निर्माण का मतलब है कि इस भिन्न किस्म से कल्पित छात्र निकाय को संबोधित करने के लिए संस्थागत संरचनाओं को बदलना होगा।

भारतीय सभ्यता में आधुनिक संस्थानों की कल्पना करना एक ऐतिहासिक कमजोरी रही है। ऐसे संस्थागत व्यवहारों को लागू करना जो वैयक्तिकता, तार्किकता और चिन्तनशीलता अभिव्यक्त करते हैं भारत में अपेक्षाकृत एक नया लक्षण है और इसे अलग-अलग हिस्सों में पाते हैं, जैसे- कुछ अकादमिक संस्थान, कॉर्पोरेशन, राज्य के हिस्सों, इत्यादि में। अब एक ऐसी आधुनिकता का निर्माण करना है जो अन्य हर बातों के ऊपर समुदायों और हमारे अस्तित्व के सामाजिक अंशों को भी स्वीकार करती हो! यह कठिन कार्य होगा। लेकिन स्वतंत्रता और समानता आधारित प्रतिभाशाही का आदर्श हमें प्रेरित करता है कि हम इसे आजमाने के लिए आगे बढ़ें।

इसके साथ-साथ, जब संस्थानों, पाठ्यचर्याओं और शिक्षाशास्त्रों के पुनर्निर्माण की बात कर रहे हों तो अपनी सीमाओं को भी जान लेना उचित है। चूंकि वे महत्वपूर्ण हैं, वे एक और अधिक न्यायसंगत और निष्पक्ष समाज बनाने में इतना योगदान दे सकते हैं। इस बात की तरफ इशारा किया गया है कि आरक्षण हमारे मस्तिष्क और मीडिया का समय और ध्यान आकर्षित करते हैं ऐसा करके दरअसल वे हमारे ध्यान को और अधिक प्रभावकारी कदम उठाने से भटका देते हैं। जो षड्यंत्र सिद्धान्तों के पदों में सोचना पसंद करते हैं, उनका कहना है कि भारत के लोगों का ध्यान हटाने का यह एक सुनियोजित प्रयास है तो उस बात को छोड़ते हुए मैं सिर्फ यह याद दिलाना चाहूंगा कि आरक्षण से वैसे भी बहुत फर्क नहीं पड़ता सुनियोजित षड्यंत्र को स्पष्ट रूप से साबित करना कठिन है।

केवल एक उदाहरण लें, भारत के प्राथमिक स्कूलों में गुणवत्ता के असीम अंतर पर विचार करें। महंगे शुल्क वाले प्राइवेट स्कूलों, सस्ते शुल्क वाले प्राइवेट स्कूलों, केन्द्रीय विद्यालयों, एकल-शिक्षक ग्रामीण सरकारी स्कूलों, इत्यादि के बीच जबरदस्त अंतर भारतीय शिक्षा और तदन्तर भारतीय समाज में असमानता के संरचनात्मक कारणों में से एक है। कई देशों में सामाजिक गतिशीलता के अध्ययनों ने दर्शाया है कि किस प्रकार राजनीतिक दबाव और संस्थागत-निर्माण की गोलबन्दी ने निर्धनों के पक्ष में शैक्षणिक सुविधाओं में जबर्दस्त बदलाव किया है। वंचितों के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले स्कूलों और उच्च शिक्षा के प्रावधान ने प्रतिभाशाही के एक निकटतम सादृश्य को रचने में बहुत ही सहयोग दिया। भारत में एक ऐसी व्यवस्था की राह में जिसमें केवल प्रतिभा का महत्व हो न कि किसी के परिवार का हमारी नजर में सबसे बड़ी रुकावट बच्चों को उपलब्ध विभिन्न प्रकार के स्कूलों के बीच विशाल असमानता है।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि छात्रों का दाखिला उनकी सामाजिक वंचना के आधार पर लेना प्रतिभाशाही के लिए एक खतरा है। लेकिन, स्कूल की गुणवत्ता में असमानताएं प्रतिभाशाही के लिए आरक्षण के कुछ भी करने की हमारी कल्पना से कहीं अधिक बड़ा खतरा है। लेकिन फिर भी इस मोर्चे पर कोई भी काम दिखलाई नहीं देता। पिछले साल के बजट में प्राथमिक शिक्षा के लिए राशि का आवंटन स्थिर रहा यानी वास्तविक अर्थ में यह घट गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को आवंटित राशि को लगभग आधा कर दिया गया, इससे उच्च शिक्षा के निजीकरण के मजबूत संकेत मिले। इसमें उनकी योग्यता और प्रतिभा की बिना परवाह किए उपेक्षितों और वंचितों की बड़ी संख्या को शिक्षा व्यवस्था

से बाहर निकाल देने का सामर्थ्य है। यह हम जैसों, जो प्रतिभाशाही में विश्वास करते हैं, के लिए कई अन्य चीजों से कहीं अधिक बड़ा संकट दर्शाता है।

जिस प्रकार पूर्व में हमने प्रतिभाशाही की कल्पना की वह बहुत ही अधिक संकीर्ण है। इसने उन सामाजिक सन्दर्भों को नजरंदाज किया जो इसे गढ़ते हैं। प्रतिभाशाही का निर्माण व्यक्तियों को केवल उनकी उपलब्धियों के आधार पर पुरस्कृत करके या पुरस्कृत न करके नहीं होता है, हालांकि वह निःसंदेह बहुत महत्वपूर्ण है और हमें यह ध्यान देना चाहिए कि पुरस्कार में मात्र शक्ति और पैसे के परे कई अर्थपूर्ण चीजें सम्मिलित हो सकती हैं। प्रतिभाशाही का निर्माण ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओं और उनके अन्दर शैक्षिक व्यवस्थाओं को लेकर किया जाता है जो वैयक्तिक हितों और क्षमताओं को सामाजिक उत्पत्तियों से आजाद करती हैं। इसका अर्थ है जिस प्रकार हम सोचते हैं उसमें कम से कम दो स्तरों का बदलाव है। पहला, प्रतिभा को एक वैयक्तिक तरीके से नहीं बल्कि एक ऐसे तरीके से जो सामाजिक संदर्भ को इसमें समाहित करता है, देखा जाना है। दूसरा, इसका अर्थ संस्थागत रूप में सोचना है जिससे कि संस्थागत प्रक्रियाओं को परिवर्तित किया जा सके। आधुनिक शैक्षणिक संस्थान ही आज वह मुख्य स्थल है जहां हम काम कर सकते हैं और अपने इस विश्वास को कि प्रतिभा की रचना होती है न कि यह विरासत में मिलती है, व्यवहार में ला सकते हैं। हमारे आदर्श अपने संस्थागत व्यवहारों को अपने सपनों के निकट लाने की चुनौती पेश करते हैं। ◆

(यह लेख ईपीडब्ल्यू के 25 नवम्बर, 2017 के अंक से साभार)

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, होशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

संपर्कः amman.madan@apu.edu.in

संदर्भः

Dandekar, V (2013): "Reservations in Medical Education in Maharashtra: An Empirical Study," Beyond Inclusion: The Practice of Equal Access in Indian Higher Education, S Deshpande and U Zacharias (eds), New Delhi: Routledge, pp 95-144.

Trevelyan, G O (1864): The Competition Wallah, London and Cambridge: Macmillan and Co.

Weisskopf, T E (2004): "Impact of Reservations on Admissions to Higher Education in India," Economic & Political Weekly, Vol 39, No 3, pp 4339-49.

मुख्य आवरण के चित्रकार...

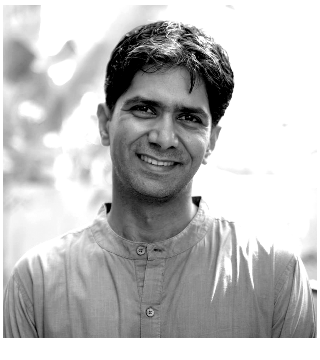

अमित कल्ला जाने-माने चित्रकार एवं कवि हैं। जहां उनकी कविता में मौन अपने लिए भाषा गढ़ता है वहीं उनके चित्र स्वयं को तलाशने की प्रक्रिया से आकार पाते हैं। रंगों को बरतने की जो भारतीय परंपरा रही है उसकी उन्हें गहरी समझ है। उनके चित्रों में एक तरफ जहां गहरा विट है, वहीं दूसरी ओर वे संवेदनात्मक अनुभूति से भरे हैं। उनके हाल के चित्रों में ज्यामितीय आकारों की सघनता बढ़ी है। उनकी इस बात में आस्था है कि रचानात्मकता मनुष्य को सशक्त व ईमानदार बनाती है। ◆